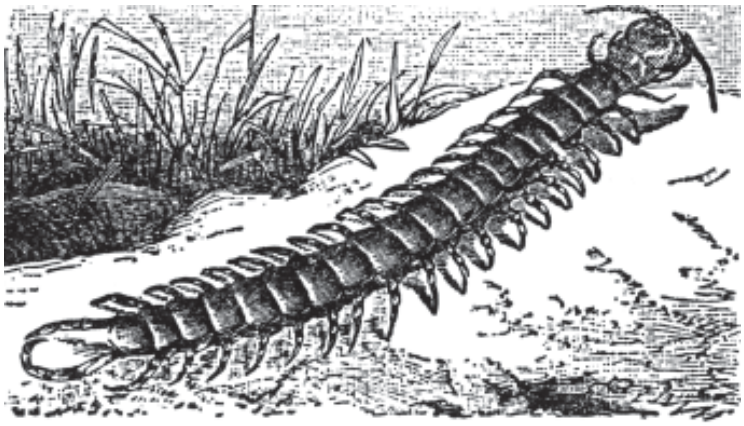

ढेर सारी टाँगों वाला जीव - कनखजूरा

कालू राम शर्मा

भारत का जाना-पहचाना प्राणी है कनखजूरा। हिन्दी में इसका नाम कनखजूरा या कानखजूरा है। वहीं इसे राजस्थान में 'कांसला', पंजाब में 'कांकोल' और महाराष्ट्र में 'कंसुई' के नाम से जाना जाता है।

जहाँ मिट्टी और उसमें पेड़-पौधों के अवशेष सड़-गलकर ह्यूमस बन रहे होते हैं उसमें कनखजूरे निवास करते हैं। अगर हम पुरानी पड़ी हुई ईंटों और पत्थरों को उथल-पुथल करेंगे तो वहाँ कनखजूरे ज़रूर दिखाई देंगे। ये रात में सक्रिय रहते हैं और दिन में कहीं नमी वाली जगह में दुबके रहते हैं। जब आप उस जगह को कुरेदेंगे तो कनखजूरा सरपट भागकर खुद को सुरक्षित जगह में छिपा लेता है।

कनखजूरा आर्थोपोड समूह का सदस्य है। इसका अँग्रेज़ी नाम सेंटीपीड है। (सेंटीपीड लेटिन भाषा का शब्द है - *सेंटी* यानी सौ और *पीड* का अर्थ टाँगें।) आर्थोपोड समूह के जीवों में हड्डियाँ नहीं होतीं मगर शरीर के ऊपर कड़ा आवरण होता है। यह आवरण सख्त क्यूटिकल का बना होता है। टाँगें पर भी यह आवरण होता है।

कनखजूरे में संयुक्त आँखें होती हैं, मगर आँखों की दृष्टि इतनी कमज़ोर होती है कि ये रोशनी और अँधेरे का फर्क भर कर पाते हैं। कनखजूरों की प्रजाति में कुछ कनखजूरे ऐसे भी हैं जिनमें आँखें होती ही नहीं। बिना आँखों वाली किस्में सुरंगों में रहती हैं। दिलचस्प बात यह कि सुरंगों या अँधेरे में रहने वाली किस्मों का रंग भद्दा होता है।

कनखजूरों की अब तक लगभग 8000 प्रजातियाँ खोजी जा चुकी हैं। इनमें से महज़ 3000 के बारे में ठीक से जानकारी उपलब्ध है (भारत में कनखजूरे की कितनी प्रजातियाँ हैं, अब तक शायद इसकी कोई संकलित सूची बनी नहीं है)।

कनखजूरे के सिर पर दो स्पर्शक (tentacle) निकले रहते हैं जो इन्हे आसपास की सूचनाएँ देते हैं (ये स्पर्शक कम्पन पहचान सकते हैं और आस्वादन व सुनने के अंगों के रूप में व्यवहार करते हैं)। सिर के पीछे वाले खण्डों में टाँगें होती हैं और शरीर के पहले खण्ड में विषैले पंजे होते हैं - ये परिवर्तित (modified) टाँगें हैं जो काफी नुकीली और मज़बूत होती हैं। विषैले पंजों का इस्तेमाल ये शिकार करने और अपने बचाव के लिए करते हैं।

बचे हुए हर खण्ड में टाँगों की एक जोड़ी होती है। इसीलिए शायद ऐसा लगता है कि इनकी बहुत सारी टाँगें हैं। दरअसल, कनखजूरे की समस्त प्रजातियों पर नज़र डालें तो इनमें से जिओफिलीडे समूह के कनखजूरों में 191 जोड़ी तक टाँगें होती हैं। मगर ज़्यादातर कनखजूरों में 15 से 30 जोड़ी टाँगें पाई जाती हैं।

एक विशिष्ट बात यह है कि कनखजूरे में टाँगों की संख्या विषम जोड़े में होती है। अर्थात् 15, 17 या 19 जोड़ी टाँगें न कि 16, 18 आदि। इसका मतलब यह हुआ कि कनखजूरे के विकास के दौरान खण्ड सिर्फ जोड़े में ही बनते हैं। विकासपरक जीवविज्ञान में चल रही शोध इसको ढूँढ़ने पर केन्द्रित है कि यह कैसे होता है।

कनखजूरे का शरीर चपटा और रंग ज़्यादातर भूरा होता है। पर कुछ प्रजातियों का रंग भड़कीला होता है जो माना जाता है कि उनके विषैले होने की चेतावनी देता है।

इनका भोजन प्रमुख रूप से छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं। कनखजूरे के आहार में बड़ा लचीलापन होता है। यह देखा गया है कि विषम परिस्थितियों में इन्हें अगर छोटे कीट न मिलें तो ये सड़ी-गली पत्तियों को भी अपना आहार बना लेते हैं। कनखजूरे स्वयं अनेक पक्षियों जैसे कि नीलकण्ठ, गौरैया तथा अन्य जीवों जैसे साँप, मेंढक, चमगादड़ आदि का शिकार बनते हैं।

कनखजूरे के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि ये कान के रास्ते से दिमाग में घुस जाते हैं। इस बात में सत्यता केवल इतनी ही है कि ये रात में ज़मीन पर सोने वालों के कान में घुस सकते हैं। यह भी शायद इसलिए होता होगा क्योंकि इन्हें छिपने के लिए कोई अँधेरी जगह चाहिए। पर संयोगवश ही कभी ऐसा हो सकता है, यह कोई आम बात नहीं है। मैं स्वयं कई आदिवासी इलाकों, खास कर वहाँ चलने वाली आवासीय आश्रमशालाओं में बच्चों के कानों में छोटे-छोटे कठोर कवच वाले भृंग (बीटल) के घुसने की घटनाओं का साक्षी रहा हूँ। खासकर, बरसात में जहाँ बच्चे ज़मीन पर सोते-

बैठते हैं उनके कानों में बीटल्स वगैरह घुस जाते हैं जो काफी दर्दनाक होता है। मगर कनखजूरे के कान में घुसने की घटना मेरे देखने में कभी नहीं आई।

कई साल पहले जब मैं होशंगाबाद की किशोर भारती संस्था गया था तो मेरे कान में एक बीटल घुस गया था। इस बीटल ने मेरे कान में कुछ इस कदर धमाचौकड़ी मचाई कि उसे शब्दों में बयाँ करना सम्भव नहीं। अन्त में, वह डॉक्टर की मदद से ही निकल पाया और वो भी मृत।

कनखजूरे में नर और मादा अलग-अलग होते हैं। नर व मादा कनखजूरे संयुग्मन नहीं करते; नर मादा के लिए शुक्राणु कोष रख देते हैं जिसे मादा उसे ढूँढकर उठा लेती है। कुछ प्रजातियों में मादा प्रणय निवेदन के रिवाज़ के चलते शुक्राणु कोष उठा लेती है। मादा उचित मौका पाते ही अण्डे ज़मीन पर छोड़ देती है और फिर अण्डों को अपने पैरों की मदद से धूल में घुमाती है। अण्डे के ऊपर लसलसा पदार्थ लगा रहता है, जिस पर धूल की परत चढ़ जाती है और वे शिकार होने से बच जाते हैं। वैसे अण्डे छाल के नीचे या काई पर भी दिए जा सकते हैं। बहुत-सी प्रजातियों की मादा अण्डे सेती हैं जब तक उसमें से बच्चे न निकल जाएँ। पार्थेनो-जेनेसिस (अनिषेक जनन) का मामला कनखजूरे की कुछ किस्मों में भी देखा गया है। यानी मादा, बिना नर के अण्डे जनती है। इन किस्मों में नर होते ही नहीं।

कनखजूरे के बारे में यह कहना कि इसके काटने से मौत हो जाती है, एकदम गलत है। छोटे किस्म के कनखजूरों के पंजे इतने मज़बूत नहीं होते कि इन्सान की चमड़ी में चुभाए जा सकें। हाँ, कुछ छोटे जीवों का शिकार करने में ये मददगार ज़रूर होते हैं। पर कनखजूरे की कुछ प्रजातियों के काटने से दर्द बहुत होता है, सूजन होती है और खुजली चलती है।

कालू राम शर्मा: विज्ञान शिक्षण एवं फोटोग्राफी में रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, उत्तराखण्ड में कार्यरत हैं। देहरादून में निवास।